दूसरा पड़ाव

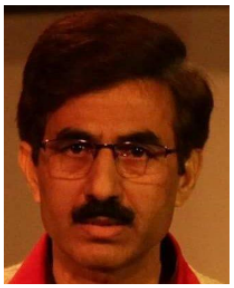

हिन्दी ADDA

एम हनीफ मदार

दूसरा पड़ाव

जब भी उसकी आँखों को देखता तो उनमें डूब जाने को वेकल होने लगता। और सिर्फ मेरे साथ ही ऐसा नहीं होता बल्कि उन आँखों को जो भी देखता होगा निश्चित ही उसका यही हाल होता होगा, यह बात मैं इतने आत्म-विश्वास से इसलिए कह सकता हूँ कि मुझे उसकी आँखें महज आँखें नहीं कोई झील लगती थीं। जिसकी अतल गहराईयों में उतर कर कोई भी इन्सान थाह लेने को वेकल हो ही जायेगा। उसकी आँखें उस खारे पानी से लवालव रहती थीं जिस खारेपन को दुनिया भर के दीवाने

अपने होठों से सोखने की कल्पनायें दिन-रात करते रहे हैं या यूँ कहूँ कि उसकी आँखों का पानी सूखा नहीं था। उसकी आखों में मुझे न जाने क्यूँ एक प्रणय निवेदन सा दिखाई देता था।

ऐसा मेरे सामने ही होता था या किसी के लिए भी यही दिखता हो इसे मैं पूरे विश्वास के साथ कह नहीं सकता हूँ। लड़कियों की आँखें बचपन से ही मेरी कमजोरी रही हैं। उस वक्त मेरी उम्र शायद दस या बारह वर्ष रही होगी तब भी पड़ोस की एक मैली, कुचैली, लड़की की आँखों में मुझे प्रणय निवेदन दिखता था। यह आदत मुझमें तब से आज तक बनी हुई है। किन्तु मुझे एक संतोष भी है कि मैं केवल आखों में ही झाँकता हूँ वरना...। मैं ऐसा इसलिए भी करता हूँ कि इन्सान का दिमाग प्रोग्राम बनाने का काम करता है तो उसकी आखें सम्पूर्ण स्क्रीन का।

सच कहूँ तो इन्सानी शरीर में आँखें ही ऐसा ऊतक हैं जो कभी सच का दामन नहीं छोड़तीं। शब्दों से या क्रिया-कलापों से इन्सान अपनी अंतरंग स्थितियों को छुपाने का लाख प्रयत्न करे किन्तु ये आखें उस सच को दिखाने की ईमानदारी से दूर नहीं होती। सच इतना ताकतवर भी होता है कि आदमी आखों से डर भी जाता है क्योंकि भीतर का सच केवल आँखों में ही होता है। इसलिए मैं आँखों में झाकना नहीं छोड़ पाया। हाँ तो मैं कह रहा था उसकी आखों में प्रणय निवेदन दिखने की बात किन्तु समझ नहीं पाता था कि क्या यह वाकई मेरे प्रति ऐसा कुछ है...? या उसकी कोई मर्मान्तक पीड़ा जो आखों के रास्ते निकलना चाहती है। मैं सोचता एक हफ्ते पहले ही तो उसने हमारी कम्पनी को ज्वाइन किया है और वह मेरे सामने वाली टेबिल पर बैठती भर है। और इस हफ्ते भर में मेरी उससे सुबह-शाम हलो-हाय के अलावा कोई बातचीत भी नहीं हुई है फिर एक दम से मेरे प्रति ऐसा होना नितान्त असंभव है।

कितनी वार मन हुआ कि उससे बात की जाय... लेकिन साली यह नौकरी इसे पाने की स्थितियों को सोचकर ही कलेजा मुँह को आता है...। हाँ! कल तो हाफ डे है कल तो जरूर इससे बातचीत हो पायेगी। मैं यह सब सोच ही रहा था कि एक घुँघुँरूओं सा बजता मधुर स्वर मेरे कानों से टकराया "राकेश सर आज रात तक काम करने का इरादा है क्या? जाना नहीं है...?" यह आवाज उसी की थी मिस शालिनी की जो मेरे सामने वाली टेबिल से उठकर अपना पर्स कंधे पर लटकाती बोल रही थी। मैने तुरन्त खुद को सहज करने की सफल-असफल सी कोशिश की "हाँ... न... निकलुँगा।" जाने मुझे क्या हो गया था। वह हल्की सी ऐसे मुस्कराई जैसे उसने मेरी सम्पूर्ण मनः स्थिति को मेरी आँखों में देख लिया हो। वह मुड़कर चली गयी। मुझे एक और अजीब

सी उलझन में फंसा कर। मैं उसे एक टक जाता देखता रहा। जब कि वह तो आँखों से कभी की ओझल हो गयी थी। अब मेरी आँखों के सामने मेरा ही मन मस्तिष्क उसकी अपनी-अपनी तस्वीर बना बिगाड़ रहे थे जैसे उनमें एक प्रतिस्पर्धा हो रही थी। मुझे उन तस्वीरों में से किसी एक को चुनना था। मैं अजीब संकट की स्थिति में खुद को कोस रहा था कि ले बेटा किसी की आँखों में झाकने की सजा यह है। मगर भला हो ऑफिस की उस घड़ी का जो छह बजते ही टन-टन करने लगी और मैं उस दिल और दिमाग के झगड़े से मुक्त होकर घर तो पहुँच गया।

लेकिन घर पहुँच कर भी मैं भारी तनाव महसूस कर रहा था। एक अजीब विचलन की स्थिति में था जिसे नौकरी लगने के बाद पिछले पाँच सालों में पहली बार देख रहा था। जबकि ऑफिस से निकलते ही मैं खुद को बहुत हल्का पाता था। घर आते ही सुन्दर पत्नी का चेहरा देखते ही आफिस की सारी थकान कपड़ों के साथ उतार कर हैंगर पर लटका देता था। लेकिन उस दिन ऐसा नहीं हो पाया था। जबकि पत्नी और दिनों से ज्यादा खुश दिख रही थी। मुझे प्राण वायु देने वाली उसकी मुस्कान मुझे छू भी नहीं पा रही थी। मैं जैसे शालिनी के मुँह से निकली मधुर आवाज के शब्द वाण से मूर्छित सा हो रहा था। अब मैं, शायद मैं नहीं रह गया था एक जंग का मैदान बन गया था जहाँ मेरा मन और मस्तिष्क बार-बार आपस में गुथ रहे थे।

'वह दो वर्षों में ही यहाँ तीसरी जगह नौकरी क्यों कर रही है...? और नौकरी भी अलग-अलग शहरों में...? अगर सब ठीक ठाक है तो उसकी आँखें...? अगर कोई समस्या है तो उसका इतना खुश रहना...?' मेरे मन में उठते ऐसे ही अनेक सवालों ने मेरा दिमाग भारी कर रखा था। ऑफिस में और भी लड़कियाँ काम करती हैं, या इस टेबिल पर इससे पहले भी दो लड़कियाँ काम करती रहीं, वे तो इससे सुन्दर भी थीं, बातचीत भी खूब होती थी। उनके लिए तो मैंने कभी कुछ नहीं सोचा फिर इसके लिए ही मैं क्यों सोच-सोच कर परेशान हो रहा हूँ। यह सोचकर मैने उन तमाम सवालों को जब भी झटकना चाहा उसके साँवले चेहरे पर चमकती वही काली आँखें खुद में डूब जाने का निमंत्रण देती सामने आ खड़ी होती। लगता जैसे वे काजल के काले घेरे को तोड़कर कभी भी बाहर निकल आँयेगी और मुझे खुद में समा लेंगी। और मैं फिर उलझ जाता। पत्नी को सिर दर्द का बहाना बनाकर मैं न जाने कब सो पाया।

दूसरे दिन ऑफिस में दस बजे तक उसकी कुर्सी खाली थी। वह ऑफिस क्यों नहीं आयी यह बात किसी से पूछते हुये मुझे डर लग रहा था कि कोई यह न कह दे कि उसकी छुट्टी हो गयी है। बड़े सर अभी नहीं आये हैं, सोचकर में उनके आफिस में

घुस गया और बायोडाटा वाली फाइल से उसका पता लेकर मैं बाहर आ गया। अगर बड़े सर आकर मुझे ऐसा करते देख लेते तो मेरे पाँच साल के रिकार्ड की मिट्टी-पलीद तो होती ही नौकरी से भी हाथ धोना पड़ सकता था। यह जानते हुए भी यह सब मैं न जाने क्यों कर रहा था। 'बी. 175, चन्दनबन फेस-2' एक नजर में ही बिना लिखे मेरे दिमाग में कम्प्यूटर की मैमोरी की तरह फीड हो गया था।

उस दिन भी शालिनी छुटटी पर थी। मैंने भी छुट्टी ले रखी थी घर के किसी काम से और असल बात कहूँ तो मैंने उस दिन खास उससे मिलने को ही छुट्टी ली थी। लगभग चार बजे का समय था मैं सोच रहा था कि वह घर में अकेली होगी। जब उसने दरवाजा खोला तो वह चूड़ीदार पायजामी और कुर्ता पर कमर में कसकर बांधे हुए दुपट्टे के साथ दिखी चेहरे पर पसीने की बूँदे चमक रही थीं उसकी तेज चलती साँसों से लगता था जैसे कहीं से दौड़कर आ रही है। तब उसकी आँखों में एक अजीब सी चमक थी। किन्तु वह मुझे देखकर कुछ ऐसे सकपकाई जैसे कुछ अप्रत्याशित घटित हुआ हो। और था भी, क्योंकि मेरे इस तरह उसके घर पहुँचने की शायद उसे उम्मीद नहीं थी। होती भी कैसे पिछले तीन महीनों में मेरी उससे बात-चीत भी कितनी हो पाई थी। मैं खुद ही उसकी आँखों में बस डूबता उतराता रहा हूँ। उसे तो मैंने इस बात की भनक भी नहीं होने दी थी। हाँ यदा-कदा ऑफिस में साथ चाय जरूर पी ली थी। लेकिन तब भी वे बाते कहाँ कर पाया था जो मैं चाह रहा था। अब ऑफिस में, मैं कोई अकेला तो था नहीं कि मैं, और वह बस एक दूसरे के आगे पीछे ही घूमते रहें। इतने पर भी तो ऑफिस के कई लोग चुटकियां लेने लगे थे। मुझे इन बातों से बड़ी नफरत है इसलिए भी मैं आफिस में उससे ज्यादा बात नहीं कर पाया था। मैंने सोच लिया था कि अब छुट्टी लेकर ही बात बनेगी।

"सर आप...?"

"हाँ... आज छुट्टी पर था... और इधर एक काम से आया था... अचानक याद आया कि आज आप भी छुट्टी पर हैं सोचा आपसे मिलता चलूँ... । वैसे भी आपके बिना ऑफिस में मन नहीं लगता।" मेरी इस बात पर उसके चेहरे पर एक सहज मुस्कराहट उभरी थी हाँ लेकिन... उसके चेहरे पर उगी पसीने की बूँदें गहरा गई थीं।

उसी दिन उसने बताया था कि "मैं रिहर्सल करा रही थी आज छुट्टी है तो थोड़ा जल्दी करा रही हूँ नहीं तो ऑफिस से आने के बाद शाम को करा पाती हूँ।"

"रिहर्सल... किसकी...?"

"नाटक की।"

सुनकर मैंने उसे ऐसे ताका जैसे उसने ठहरे हुए पानी में पत्थर मार दिया हो। नाटक और इस शहर में... मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। होता भी कैसे पिछले पाँच सालों से इस शहर में मैं रह रहा हूँ लेकिन कोई नाटक तो क्या इस तरह की कोई चर्चा भी नहीं सुनी थी मैंने। हाँ इससे पहले स्टूडैण्ट लाइफ में दिल्ली में जरूर सैकड़ों नाटक देखे और सच कहूँ तो वहीं से मुझे पढ़ने की आदत लगी और कभी-कभी अखवारों में चिट्ठी लिखने का शौक भी। लेकिन नौकरी के बाद इस शहर में और फिर शादी के बाद तो जैसे सब बीते जमाने की बातें हो गई। फिर वह शाम को आफिस के बाद देर रात कैसे यह सब कर पाती होगी? मुझे उसकी बात कुछ अटपटी लगी तो मैने उसे और कुरेदना चाहा।

"... और तुम्हारे पति ...?" इस सवाल पर वह न जाने क्यों एक दम से चुप हो गई और अगले ही पल "मैं आपके लिए चाय लेकर आती हूँ।" कह कर उठ गई। मुझे उसकी यह चुप्पी सामान्य नहीं लगी थी। शायद उसे यह बात बुरी लगी जैसे कोई किताब झटके से बन्द हुई हो।

मेरे साथ चाय पीते हुए शालिनी ने अपनी चाय बड़ी जल्दी में खत्म की जबकि मैं चाय के साथ ही उसके बारे में बहुत कुछ जान लेने की मंशा में था। मुझे लगा आज वह बात करने के मूड में नहीं है। मैं अपनी शंका जाहिर करने को कुछ पूछता कि मेरा चाय का कप खाली होते ही उसी ने कहा "सर... क्षमा करना, आज मैं आपको ज्यादा समय नहीं दे पा रही हूँ। ...हालाँकि मैं भी आपके साथ बैठना चाह रही थी। कुछ बातें करनी थीं।" उसने यह बात जितनी सहजता से कही थी मैं उतना ही असहज हो गया था। मन में आया कि कह दूँ कि अरे छोड़े अपने काम को बैठे तो हैं बातें कर ही लेते हैं लेकिन शिष्टाचार का ख्याल आते ही "हाँ... हाँ कोई बात नहीं मैं भी आज तनिक जल्दी में ही था।" मेरे झूठ बोलते समय भी मेरी आँखें मेरे मन की सच्चाई के साथ उसकी आँखें में झाँक रहीं थीं।

शालिनी उन्हें पढ़पाई थी या नहीं यह तो नहीं मालूम लेकिन कल शाम को बैठते हैं... ऑफिस के बाद... यहीं घर पर... वह बोलती जा रहीं थी। मेरी नसों में बहता खून और तेज दौड़ने लगा था या शायद जमता जा रहा था पता नहीं किन्तु मेरी आवाज नहीं निकल पा रही थी बस हाँ में सिर हिला पा रहा था। "सर यदि आप बुरा न मानें तो कल शाम को मैं आपकी बाइक पर आपके साथ ही आ जाती हूँ। आपको आना तो है ही मुझे यहाँ तक लिफ्ट मिल जायेगी।" यह बात कहते हुए वह इतनी

अनौपचारिक लगी थी जैसे हम एक-दूसरे को वर्षों से जानते हैं। या कहूँ केवल जानते ही नहीं बल्कि करीब से जुड़े हैं। उसकी इन बातों और उसकी आँखों के निवेदन ने मेरे रक्तचाप को इतना बड़ा दिया गोया कुछ और पल वहाँ रूकता तो शायद मेरे दिमाग की नसें फट पड़ती। रात में कई बार पत्नी ने मुझे छुआ तो कहा "आपको तो बुखार है...।"

सुबह आफिस जाते समय मैंने हैलमैट लिया तो पत्नी ने अचम्भा किया "आज हैलमैट की जरूरत क्यों आ पड़ी... आप तो कभी पहनते ही नहीं हैं।" "हाँ आजकल चैकिंग चल रही है... इसलिए साथ ले जा रहा हूँ।" असल में यह कहकर मैंने पत्नी को बस समझाया भर था। वैसे यहाँ इस शहर में हैलमैट को पूछता कौन है। हाँ कुछ लोग जो हैलमैट पहनकर चलते हैं उसमें भी दो तरह के लोग हैं, पहले जो अपने जीवन के प्रति जागरूक हैं। दूसरे वे जो हैलमैट में अपना सिर छुपाकर आश्वस्त हो जाते हैं कि उन्हें कोई देख या पहचान नहीं सकता और फिर मस्ती से किसी के साथ किसी भी गली में आते जाते हैं। सच पूछो तो मैंने भी हैलमैट इसीलिए साथ लिया था कि शाम को शालिनी के साथ बाइक पर जाते हुए कोई पहचान न सके।

ऑफिस में शाम तक किसी काम में मन नहीं लगा। आठ घंटे का ऑफिस टाइम जैसे आठ वर्ष का हो गया हो। मैं अपनी मनोदशा को जाहिर न होने देने की इच्छा के चलते न जाने कितनी बार बाहर गया सिगरेट पीने। ऑफिस में हमें सिगरेट पीने की अनुमति नहीं है ऐसा रूल है हाँ बड़े सर अपने केबिन में बैठकर चाहें तो डिब्बियाँ खाली करें तब वह रूल केवल रबड़ की तरह मुड़कर रह जाता है टूटता नहीं है। बाहर बैठे बाबा चाय वाले को न जाने क्या मजा है कि कौन क्या सोच रहा है क्या कर रहा है उसे सबमें उँगली करनी। मैं हर बार सिगरेट के साथ चाय पीता इसलिए कि मैं उसकी आदत से वाकिफ था तो कही यह न सोचे कि आखिर मैं बार-बार क्यों बाहर आ जाता हूँ। लेकिन उसने मुझे टोक ही दिया राकेश सर आज आप कुछ परेशान से हैं क्या...? यह आपकी आज आठवीं चाय है। मैं अन्दर से कुछ सकपका सा गया। किन्तु बाहर से मैंने बनाबटी गुस्सा दिखाया जैसे मेरी कोई चोरी पकड़ ली हो 'क्यों आठ हों या दस तुझे पैसे से मतलब या कुछ और।? मेरी झिड़की से बह सहम गया और मोके का फायदा उठाकर अन्दर चला आया।

ठीक पाँच बजे मैं शालिनी को अपनी बाइक पर बिठाकर उसके घर को निकला। न जाने क्यों बाइक चलाते हुए मुझे लगने लगा कि हम ऑफिस से नहीं बल्कि कॉलेज से आ रहे हों। मोटर साइकिल भी अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ तेज चल रही थी।

चलते-चलते ब्रेक लगाने पर शालिनी मुझसे टकराती तो लगता शालिनी मेरे साथ शरारत कर रही हो। हैलमैट लगे होने के कारण हम दोनों कोई बात नहीं कर पा रहे थे। शालिनी भी एक दम शान्त बैठी थी। उसने अपना दाहिना हाथ मेरे कन्धे पर रख लिया था। ब्रेक लगाने पर उसके हाथ का दबाब मेरे कंधे पर बढ़ जाता जो मुझे एक अजीब से सुख से तर कर जाता। इसलिए मैं जानबूझ कर बाइक को ऐसे भीड़ भरे इलाके से निकाल रहा था जहाँ बार-बार ब्रेक लगाने पढ़ रहे थे। मैंने एक कॉफी हाउस पर बाइक रोकी भी 'क्या हुआ सर...?'

"मैं सोच रहा था... एक कॉफी हो जाय... ?" मेरी बैचेनी बढ़ रही थी मैं किसी फिल्मी हीरो की तरह कॉफी टेबिल के इर्द-गिर्द बैठकर कुछ आत्मीय बाते कर उसे परख लेना चाह रहा था कि जैसे मैं उसके लिए सोच रहा हूँ वह भी मेरे लिए सोचती है। या मेरा भ्रम ही है। "नहीं... घर पर ही करेंगें जो भी करना है। यहाँ बैठ गये तो देर हो जायेगी।" भले ही उसने कॉफी पीने से इनकार किया था। लेकिन मुझे जैसे आश्वस्त कर दिया था कि मैं जो सोच रहा हूँ वह उससे दो कदम आगे है।

दुकानों में जल उठी लाइटों की रोशनी दुकानों से बाहर सड़क तक पसरने लगी जो बारी-बारी मेरे मन में उठते विचारों की तरह आ जा रही थी। यह आधुनिक स्त्रियाँ हैं... इनसे प्रेम की उम्मीद करना तो बेमानी है। इनके लिए नित नये पुरूष बदलना एक खेल जैसा होता है। इस्तेमाल करना ही जानती हैं ये यह अलग बात है कि कई दफा ये खुद भी इस्तेमाल होती है, जैसे आज... तभी तो आसानी से कह दिया इसने कि जो भी करेंगें घर पर ही करेंगें शायद इसीलिए अकेली भी रहती है। मैं ऐसे ही सोचता विचारता उसके घर से आगे निकल जाता यदि वह नहीं टोकती "अरे कहाँ जा रहे हो सर घर पीछे छूट गया।" मैंने मुरझाये से चहरे से बाइक रोकी। दरअसल मेरे मन में बना उसका एक प्रतिमान न जाने कब बाजार से यहाँ तक आते-आते मेरे मन से ढह गया था।

शालिनी के घर की सीढ़ियाँ चड़ते हुए उससे अकेले में मिलने की कल्पना भर से मेरे भीतर एक और पुरूष उठ खड़ा हो रहा था। सीढ़ियों पर मेरे आगे-आगे चलती वह, मुझे किसी ब्लू फिल्म की एक्टर लग रही थी। रोमाँ च से शायद मेरा चेहरा सुर्ख हो गया था।

शालिनी के साथ कमरे में प्रवेश करते ही एक वारगी मेरी आँखें खुद पर विश्वास नहीं कर पाईं। मेरे चेहरे की रंगत एक साथ कई बार बदली। वे रंग भी कई बार गये और आये जिन्हें मैं शालिनी की आँखों में झाँकने के पहले दिन से आज तक शालिनी की

तस्वीर में भरता रहा था। मेरा मन हुआ कि मैं यहाँ से वापस भाग खड़ा होऊँ। जिस कमरे में, मैं कल अकेला शालिनी के साथ बैठा था वहाँ एक साथ कई जवान लड़के-लड़कियों के साथ एक अधेड़ को बैठा देखकर मैं इतना असहज हो गया जैसे मेरा अपराध खुल गया हो। मुझे लगा मैं बलि का बकरा बन गया हूँ। शालिनी सबके सामने मुझे अपमानित करेगी... लेकिन ये लोग हैं कौन...? शालिनी ने तो कभी किसी के विषय में बताया ही नहीं। पल भर में कई सवालों ने एक साथ फन उठाया और जवाब के अभाव में दम तोड़ दिया। मैं भी तो बिना कुछ सोचे समझे शालिनी को लेकर जाने क्या-क्या उल-जुलूल गणनायें करता रहा। एक बारगी मुझे खुद पर तेज गुस्सा आने लगा मन हुआ चीखकर अपने बाल नौंचने लगूं। मेरा दिमाग सुन्न हो गया था। इसी लिए मेरी आँखें खुली की खुली रह गयीं थीं। पलक ही नहीं झपका। शालिनी शायद मेरी स्थिति को भाँप गयी है यह सोचकर मैं अपने में और गढ़ा जा रहा था। लेकिन गनीमत रही कि शालिनी ने बड़ी सहजता से कहा

"आइये सर बैठिए... यह सब हमारी यूनिट के लोग हैं।"

"यूनिट... ?" मैंने सहज होने की प्रक्रिया में बैठते हुए पूछा।

"जी सर! मैं अभी आपका परिचय कराती हूँ।" शालिनी ने उस अधेड़ व्यक्ति से शुरूआत की "आप हैं श्री जगदीश चन्द्र माथुर जी बी.वी.एन.ए. महाविद्यालय के लाइब्रेरियन। और ये इनके कॉलेज के स्टूडैन्ट।" सबने अपना-अपना नाम बता दिया। शालिनी ने मेरा परिचय भी खुद ही कराया "आप मेरे ऑफिस में बड़े बाबू है, आप एक अच्छे इन्सान है और कभी-कभी लिखते भी हैं।" मैं सबके साथ बारी-बारी हाथ मिला रहा था किन्तु मेरी उलझन बड़ती जा रही थी। मैं परेशान था यह सोचकर कि शालिनी को यह कैसे जानकारी हो गयी कि मैं कभी लिखता भी रहा हूँ जब कि यह बात तो अब बहुत पुरानी हो गई लगभग आठ वर्ष हो जब मैं दिल्ली के जामिया में एम-कॉम कर रहा था। उस समय कभी कभार अखवारों या पत्रिकाओं को पढ़ने पर दोस्तों के साथ सहमति असहमति पर वहस हो जाती तो हम अखवारों या पत्रिकाओं में चिटठी लिख लिया करते थे। वह तो ऐसा साहित्य भी नहीं था कि उसे पढ़कर मेरे नाम से इसने मुझे पहचान लिया हो। फिर... मैं अपनी याददाश्त को और झकझोरता कि एक लड़की चाय लेकर आ गई और मेरा ध्यान चाय की तरफ चला गया। चाय हाथ में आते ही शालिनी ने कमरे में स्थापित हुए मौन को तोड़ते हुए मेरी आँखों में अपनी आँखें डाली "सर हम सब मिलकर यहाँ एक रंग मंचीय संस्था की स्थापना कर

रहे हैं।... और हम चाहते हैं कि आप हमारे साथ खड़े हों तो हम सबको अच्छा लगेगा।"

शालिनी की बात सुनकर मुझे एक अजीब झटका सा लगा। जैसे मैं कहीं ऊँचे से गिरा होऊँ... मेरा मन हुआ मैं ठठाकर हँस पड़ूँ। इस शहर में रंगमंच बड़ी बचकानी सी बात लगी मुझे। मैं बारी-बारी सबके चेहरे ऐसे देखने लगा जैसे वे सब मूर्ख हों। अंत में मेरी नजरें शालिनी की झील सी आँखों के गहरे समुद्र में डूबकर फंस गईं। उसका वह निवेदन लगातार गहराता जा रहा था। मैं उसके इस प्रस्ताव को ठुकराना चाहता था लेकिन न जाने क्या था उन आँखों में कि मैं बोल ही न सका। मेरी मूक सहमति समझकर शालिनी ने मुझे उकसाया।

"सर आप पिछले कई वर्षों से इस शहर में रह रहे हैं। आपका सर्किल भी बड़ा होगा। अपने कुछ सुझाव तो रखिए।" उसकी आँखों से निकलते ही मैं जैसे जमीन पर आया था। "शालिनी मेरा लिखा तुमने ऐसा क्या पढ़ लिया जो बताया कि मैं लिखता रहा हूँ।" "आप एक दिन आफिस में फोन पर अपने किसी दोस्त से बात कर रहे थे तब मैंने सुना था।" मुझे याद आ गया था विजय से बात हुई थी जो आगरा में रहता है। जामिया में हम दोनों साथ थे।

"शालिनी मैं पिछले पाँच वर्षो से इस शहर में हूँ। रोजाना के अखवार या लोकल चैनल शहर भर के धार्मिक अनुष्ठानों या साम्प्रदायिक तनाव की खबरों से भरे रहते है। जहाँ अपने-अपने धार्मिक कर्मकाण्डों को ही सांस्कृतिक क्रिया कलापों के रूप में जाना जाता हो। हिन्दू मुस्लिम जहाँ इक्कीसवी सदी में पहुँचकर भी इन्सानों जैसा व्यवहार न कर पा रहे हों वहाँ तुम्हारी यह कोशिश किसी चट्टान पर पेड़ उगाने जैसी नहीं लगती?" मैंने एक विराम लेकर सबके चेहरों को प्रतिक्रिया स्वरूप पढ़ना चाहा सबके चेहरों पर जैसे वर्फ पड़ गई हो हाँ लेकिन शालिनी हल्के से मुस्करा रही थी। देखकर मुझे पहली बार शालिनी पर खीझ हुई थी।

"तुम्हें मेरी बातें मजाक लग रही है ... शालिनी...?"

"ऐसी बात नहीं है सर, बल्कि मैं कहूँ कि यह सब जानकारी मुझे पहले से है और इसीलिए मैंने इस शहर को चुना है।"

"तुम कहना क्या चाहती हो...?"

"यही कि आपको नहीं लगता कि इसी शहर को कहीं ज्यादा जरूरत है ऐसे संगठन की...?"

"मुझे तो पिछले पाँच वर्षों से लगता रहा है। लेकिन उससे क्या...? मैं अकेला कर भी क्या सकता था?"

"तो फिर किसी न किसी को तो शुरूआत करनी ही होगी।" "और अब तो तुम अकेले नहीं हो हम सब हैं।" बीच में ही मेरे सामने बैठा लड़का बोल पड़ा था।

"बिल्कुल सही गांधी ने जब अंग्रेजों के खिलाफ आवाज बुलंद की तब वे भी अकेले ही थे... हालाँकि मैं गांधी नहीं हूँ किन्तु सोचें सर एक व्यक्ति पूरे देश को अपने पीछे कर सकता है तो क्या हम सब मिलकर एक शहर के चन्द लोगों को अपने साथ लाने का प्रयास नहीं कर सकते।"

शालिनी की इस बात पर सबने तालियां बजा दी जैसे वे सब पहले से इन सब बिन्दुओं पर एक मत थे बस मैं ही बचा था। और यह जिम्मा शालिनी पर था।

मैं तो पहले से ही उसके प्रभाव में था रही कसर उसकी बातों ने पूरी कर दी थी। "शालिनी इतने लोगों को इकटठा करके एक बड़ा काम तो कर ही चुकी है। मैं हाँ करुँ या ना करुँ इस पर क्या फर्क पड़ेगा। फिर इस बहाने शालिनी का साथ तो बना ही रहेगा यह सोचकर मैं, न नहीं कर सका।"

हमारे बीच देर तक बहस होती रही। मेरी हर कोशिश शालिनी के इरादों के सामने पानी के बबूलों की तरह फूटती रही। "सबसे पहले हमें करना क्या होगा?" मेरे इतना पूछते ही सब एक साथ जीत की मुद्रा में एक दूसरे के हाथ में हाथ देते हुए लगभग चीखे। मैं परेशान आखिर क्या हो गया।

"राकेश सर! आपने 'हम' शब्द का इस्तेमाल करके सब में एक नई ताकत भर दी है।" माथुरजी के स्पष्टीकरण से मेरे भीतर भी खुशी का एक ऐसा पटाखा फूटा लगा जैसे पाँच वर्षों से परिवार से अलग इस शहर में रहते-रहते मैं खुद को भी भूल चला था। तब अचानक, एक बड़े परिवार ने मुझे मनाकर गले लगा लिया हो। मेरी आँखों की कोरें शायद फूट पड़ती यदि मैंने अपनी पूरी ताकत से पानी के घूँटों की तरह खुद अपने अन्दर ही न सोख लिया होता। शायद मेरी आँखें मेरे भीतर के सच को छुपा नहीं पाई थीं। मेरे न चाहते हुए भी वे पानी में तैर गयीं थी शालिनी ने पूछ ही लिया "क्या हुआ सर...?"

"मुझे अचम्भा हो रहा है कि इस शहर में इतनी आत्मीयता और प्रेम भी मौजूद है...।"

"हर शहर में होता है सर, शायद आपने कभी खोजा ही नहीं।" इस जवाब ने शालिनी को मेरी नजरों में बहुत बड़ा बना दिया था। मेरे भीतर अब तक की बनी उसकी तस्वीर की किरचें मेरे भीतर चुभ रहीं थीं जैसे मुझे सजा मिल रही हो।

हम शहर भर में नुक्कड़ नाटक करेंगें 'जागो रे' अन्त तक यह बात तय होते-होते शहर पूरी तरह रात के अंधेरे की गिरफ्त में आ चुका था। नाटक की रिहर्सल का समय तय होते ही सब जैसे पूर्ण तृप्त होकर घर से निकल रहे थे। लेकिन मेरे भीतर शालिनी को लेकर एक नया बीज अंकुरित हो गया था। इन बात-चीतों में मैंने कई दफा शालिनी के पैरों को देखा कोई निशानी नहीं थीं उसके शादी-शुदा होने की... तो क्या... मैं उसे...। मन में उठते विचार को मैंने हल्के से झटक दिया और चला आया था। मगर मैने देखा वह विचार झटका नहीं था बल्कि मेरे साथ ही चिपका रहा था।

रोजाना शाम को शालिनी के साथ उसके घर तक जाने के लालच में मैं रिहर्सल में शामिल होने लगा। इस बीच कभी ऑफिस से जल्दी निकल आते तो रास्ते में पड़ने वाले कॉफी हाउस पर चाय या कॉफी पीकर जरूर जाते। यह आग्रह मेरा ही होता था। इस बहाने हम नाटक के अलावा अन्य बातें भी करते। तभी मैं यह जान पाया था कि वह इलाहाबाद की रहने वाली है। वहीं उसने बताया था। 'इलाहाबाद में हमारे घर के पड़ोस में एक मैडम रहती थीं जहाँ मैं टयूशन पढ़ने जाती थी। उनके पास सहित्यिक किताबों का अम्बार रहता था। हँस, नया ज्ञानोदय, शेष, वर्तमान साहित्य जैसी अनेक पत्रिकायें मासिक रूप से उनके घर आती थीं। न जाने कब वहीं मुझे पढ़ने का शोक लगा। एक दिन, अखवार में उनका फोटो छपा देखकर मैं चौंकी थी और मैंने पूछा था। तब उन्होंने बताया कि मैं थियेटर भी करती हूँ। और लगातार कई दिन तक उसके विषय में बताती रहीं। मुझे उनकी बातें सुनकर अच्छा लगता था। उसके बाद मेरे कहने पर उन्होंने ही मुझे अपनी नाट्य संस्था से जुड़वाया था।' इन बातों के बीच में मैं कई दफा उसकी आँखों में झाँकता न जाने क्यों मैं जब भी उसको कुरेदने को कोई सवाल करता वह मुझे गोल-मोल घुमा देती कहती "अब सब कुछ आज ही जान लोगे रिहर्सल का समय हो रहा है सब लोग इन्तजार करेंगे... शेष बातें फिर कभी।" मैं कहता "शालिनी रिहर्सल की कभी छुट्टी भी कर दिया करो ...।" वह हँसते हुए कहती "सर यह काम जले हुए कंडे की आग की तरह है जिसे लगातार हवा न दी गई

तो उपर राख की परत जम जायेगी और न जाने कब ठंडी पड़ जाय... इस लिए जल्दी चलो।" फिर मेरे पास कोई जवाव नहीं रहता था।

रिहर्सल के बीच आपसी नौंक-झौंक, हँसी-मजाक, छेड़-छाड़ और शरारतों में मुझे भी आनन्द आने लगा था। नौकरी के बाद का मेरा ज्यादातर समय, शालिनी के साथ पढ़ने, बहस करने और नाटकों की तैयारियों में ही बीतने लगा था। जैसे मेरे लिए किसी हसीन राजमहल का दरवाजा खुल गया था और मैं उस राजकुमारी के सपनों का राजकुमार बन गया था। रिहर्सल के बाद या पहले मैं उसे छूता-छेड़ता और बाँहों में भर लेता रिर्हसल में फौजी कमाण्डर सी दिखती शालिनी ऐसे सिमट जाती जैसे उसका पूरा वजूद मेरी मुट्ठी में भर गया हो।

उस दिन रिहर्सल के बाद नाटक के पहले शो की तैयारियों में हम सब जुटे थे। मेरे साथ सब लोगों के लिए यह पहला अनुभव था। सब के भीतर उत्साहपूर्ण उथल-पुथल थी। क्या होगा...? कैसा होगा...? कब अंधेरा हो गया किसी को भी भान नहीं हुआ। अंधेरा होते ही लड़के-लड़कियों के घर से फोन आने शुरू हो गये थे। उस दिन वहाँ से जाने का किसी मन ही नहीं हो रहा था। वैसे तो सब ड्रैस, प्रॉपर्टी, मेकअप के सामान के साथ सबकी जिम्मेदारियाँ तय हो चुकी थीं। इस लिए शालिनी ने कह दिया था "ठीक है तुम लोग निकल जाओ केवल कल के कार्यक्रम को लिस्ट-आउट करना है सो मैं और राकेश जी कर देगें।" काम कुछ ही देर में पूरा हो गया था उस दिन शालिनी खुशी और उत्तेजना से बेहद चहक रही थी। मैं जाने लगा तो वह कुछ उदास हुई। मैंने पूछा तो बोली "खाना बनाती हूँ खाना खाकर चले जाना।"

"देर हो जायेगी...।"

"तो आज यहीं रूक जाना...।"

शायद मेरा मन भी यही था। मैंने घर फोन कर दिया आज ऑफिस में ऑडिट हो रहा है रात को आ न सकूँगा। बिनी किसी जबाब की प्रतीक्षा के मैंने फोन काटा था। उस रात बातें करते-करते शालिनी कितनी बार मोतियों की तरह विखरी थी और मैं हर बार उसे समेटकर अपने बजूद में समाता रहा था। सुबह तक शालिनी के विस्तर में कितनी ही सलबटें आ गई थीं। मैं अपराध बोध से ग्रसित था जबकि शालिनी और ज्यादा निर्मल और मुक्त दिख रही थी पुन्य-पाप के घेरे से एकदम मुक्त। उसी ने तो कहा था राकेश सर जो कुछ भी हुआ उसके लिए हम नहीं यह देह जिम्मेदार हैं और देह किसी भी पाप-पुन्य के घेरे में नहीं रह सकती। बल्कि उसको घेरे में कैद करने की

मानसिकता में हम अपराध कर बैठते हैं। वह खिलखिला कर हँसी और लैटस गो ऑन शो कह कर काम में जुट गयी।

हालनगंज चौराहे पर हम सब इकटठे हो गये थे। दर्शक के रुप में चार-छै लोग ही हमें देखकर रुके थे। हालाँकि शालिनी ने सबको खूब हिम्मत दी थी लेकिन सभी शर्म और संकोच से कहीं गढ़े जा रहे थे। अचानक शालिनी का उत्तेजक स्वर गूँजने लगा "दोस्तो हमारी आजादी को वासठ वर्ष हो गये। सरकारों के रूप में केवल मुखौटे बदलते रहे। वोटों के लिए, हमें कभी मंदिर बनवाने तो कभी मस्जिद की सुरक्षा के नाम पर वरगलाया, भड़काया अैर लड़ाया जाता रहा ताकि हमारा ध्यान हमारी ही रोजमर्रा की समस्याओं की तरफ न जा सके और वे असानी से अपने फायदे के लिए चाहे जैसे कानून बनाते अैर पास करते रहें। इसलिए दोस्तो अब वक्त आ गया हे जागने का अपने हक माँ गने का अैर जरुरत पर जवाब देने का। तो आईये हमारे साथ एक होकर जागने और जगाने के लिए...।" न जाने शालिनी के इन भाषणों ने क्या जादू किया कि हमारे इर्द-गिर्द पब्लिक का एक हुजूम उमड़ आया। उसके बाद उस भीड़ ने कौतूहल जगाया और लोग जुटते गये। भीड़ देखकर हम में भी न जाने कहाँ से ताकत आई और सब शर्म और संकोच दूर छिटक गया। शहर के लोगों ने हमारे नाटक को अजूबे की तरह देखा और खूब सराहा। वर्षों बाद अखवार की सुर्खियां बदली नजर आई 'सलिल रंग मंच ने जनसमस्याओं की ओर ध्यान खींचा प्रशासन का। नुक्कड की बड़ी सफलता यह रही कि सरकारी महकमे को शहर भर की टूटी सड़कों की मरम्मत का कार्य शुरू करवाना पड़ा।

हम सब उस दिन जश्न के रूप में चाय पार्टी कर रहे थे शालिनी इतनी खुश थी मानो जिन्दगी की सबसे बड़ी उपलब्धि उसके हाथ लगी हो। यकायक वह खड़ी हुई और सबको हाथ उठाकर शान्त किया जैसे कोई भाषण देने जा रही हो। लेकिन वह विषेशतः मुझे कुछ कहना चाह रही थी।

"क्यों राकेश सर अब तो देख ली अपनी ताकत... जनसमस्याओं के साथ-साथ अब हमें ऐसी प्रस्तुतियाँ तैयार करनी होंगी जो आम जन के बीच हिन्दू-मुस्लम का भेद मिटाकर एक सूत्र में बाँधने की बात कर सकें। अचम्भे की बात है कि परोक्ष रुप से बहुत बड़ी राजनैतिक शक्तियाँ इस गैर जरुरी भेद को बढ़ाने में जुटी हैं।" शालिनी ने एक बार सबके ऊपर नजर डाली फिर बोली "हमारा असल मकसद तभी पूरा होगा जब हम राजनैतिक इच्छाओं के लिए साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने की दिशा में बढ़े।"

जाने क्यों मुझे लग रहा था जैसे इन सब बातों को कहते हुए वह अन्दर ही अन्दर कहीं क्रोध से कँपकपा रही थी। उसकी आँखें कुछ अजीब सी रोशनी से चमक उठी थीं।

"अगले नाटक की तैयारी के लिए हम रोजाना दो घंटे के लिए माथुर साहब के घर बैठेंगें।" शालिनी ने हँसी-ठहाकों के बीच अचानक प्रस्ताव फैंका और माथुर ने सहर्ष स्वीकार भी लिया। अभी हम बातें कर ही रहे थे कि गाँव से फोन आया पिताजी की तवियत ज्यादा खराब हो गई है। सुनकर सब परेशान होंगे इसलिए मैं बिना किसी को कुछ बताए दूसरे ही दिन गाँव चला आया था। हाँ लेकिन शालिनी को फोन कर दिया था।

मैं हफ्ते भर बाद गाँव से लोटा था। इस पूरे हफ्ते भर शालिनी मेरे साथ न होकर भी जैसे मेरे साथ थी। मुझे छेड़ती और गुदगुदाती रही कभी-कभी फ्लौसफर की तरह व्याख्यान भी देती रही। मैं उसे मिलने को इतना बेचैन हो रहा था कि अपने घर जाने से पहले मैं शालिनी के घर पहुँचा। मैं सीढ़ियाँ चढ़ ही रहा था कि किसी ने नीचे से पुकारा अरे अब वह यहाँ नहीं रहती... आखिर खुल गया न उसका भेद इस लिए रात में ही निकल गई... आप खूब बच गये...।

उस अधेड़ की बातें मेरे भीतर नस्तर की तरह चुभती रहीं। मेरा सिर झन्ना गया, हाथ पैर जैसे लकबे का शिकार हो गये हों। मुझे धराशाई करने को तो उसके चले जाने की खबर ही काफी थी फिर यह उसका भेद कौन सा खुल गया था।

मैने जान बूझकर उस अधेड़ से कुछ भी नहीं कहा न पूछा बस किसी लाश की तरह लगभग लुड़कते हुए से मैंने माथुरजी को फोन लगाया शायद उन्हें कुछ पता हो।

हाँ राकेश जी वे चलीं गईं। हाँ... आपके लिए एक चिट्ठी छोड़ी है। माथुरजी जितनी आसानी से सब बातें कह गये थे मैं सुनने तक में व्यथित था। चिट्ठी की बात सुनते ही मेरी वेकली इतनी बड़ी कि मैं कंधे पर बैग लटकाये ही माथुरजी के घर जा पहुँचा, उनसे वह चिट्ठी लेने। हालाँकि माथुरजी के चेहरे पर चिन्ता की कुछ वेतरतीव सी लकीरें उभर रही थीं किन्तु मेरी बदहवासी को देखकर वे ज्यादा परेशान हो उठे थे। मुझे पीठ थपथपाकर बिठाया और एक सफेद बन्द लिफाफा मुझे सौंप दिया।

सर! मेरा इस तरह आना आप सब को अच्छा नहीं लगा होगा। खाशकर आपको, इसके लिए मैं आपकी अपराधिनी हूँ। मैं भागी नहीं वल्कि जा रही हूँ। यहाँ मेरे साथ जो हुआ उसका मुझे पहले ही भान था। वैसे भी मुझे जाना तो था लेकिन ऐसे नहीं हाँ

आपको वह सब बताकर जो आप जानना चाहते थे कुछ और भी जो आपने नहीं जानना चाहा। आपने कई बार पूछा कि मैं शादी शुदा हूँ कि नही तो सर मैं शादी-शुदा हूँ। तीन वर्ष पहले मेरी शादी रवि से हुई थी। हुई भी क्या मैंने ही कर ली थी। रवि एक व्यवसायी होने के साथ राजनैतिक रसूख वाला आदमी था लेकिन इलाहाबाद में हमारी नाट्य संस्था को खड़ा करने में उसकी बड़ी भूमिका थी। हमारे हर शो को आर्थिक मदद, रिहर्सल व शो के लिये जगह की व्यवस्था करना उसी की जिम्मेदारी रहती। रहती भी क्या वह खुद लेता था। बैठे-बैठाये सब व्यवस्थायें उसके फोन से ही हो जाया करतीं थीं। हम उसे किसी भी समस्या के लिए परेशान होते नहीं देखते थे। किसी भी समस्या पर जब वह सलीके से अपनी बात रखता तो वह मुझे किसी महापुरुष से कम न लगता। उसके सकारात्मक तर्क किसी को भी अपने साथ बाँध पाने में सक्षम दिखते। मुझे उसकी बातें बड़ी मजेदार लगतीं थीं। कभी-कभी मैं कहती क्या-क्या पढ़ते हैं आप? तो मुस्कुरा कर कहता "कुछ शेष नहीं बचा है सबको पढ़ लिया है।" उसके सामने मुझे अपनी समझ बड़ी तुच्छ प्रतीत होती थी। सच कहूँ तो मैं उसके आकर्षण में थी लेकिन यह सोचकर नहीं कि उससे शादी करनी है क्योंकि मैं शादी तो करना ही नहीं चाहती थी। अपने साथ की शादी-शुदा लड़कियों की हालत देखकर मुझे शादी के नाम से ही नफरत थी। वे लड़कियाँ जो मेरे साथ हँसती, खेलती, गाती, पढ़ रहीं थीं लगता था गोया तितलियाँ हमसे जीने की कला सीखती हैं। अचानक उनकी शादी के बाद न जाने क्या हुआ कि वे सब सहमी-सिकुड़ी उस गाय की तरह लगने लगीं जिसे उसकी बिना इच्छा के कहीं भी बाँधा, खोला या ले जाया जा सकता हो। जैसे वे सब जीवित इन्सान न होकर गोश्त की पोटली हैं। मैं पूछती तो वे कहती "शालिनी यही हमारी मान मर्यादा है... शादी के बाद तू भी ऐसे ही हो जायेगी।" ऐसी बातें सुन-सुन कर मैंने शादी न करने की ठान रखी थी। तब मेरी समझ में आया था कि शायद मेरी ट्यूशन वाली मैम ने भी इसीलिये शादी नहीं की होगी।

पापा मुझे बहुत चाहते थे लेकिन मेरे नाटक करने के खिलाफ थे। मैं ही नहीं मानी थी। हमेशा एक ही बात कहती "नाटक करती हूँ... तो इसमें बुरा क्या है... और फिर इससे आपकी कौन सी इज्जत जा रही है।" पापा बस कसमसा कर रह जाते, उनके किसी दोस्त ने उन्हें यह तरीका सुझा दिया कि शादी कर दो सब अपने-आप भूल जायेगी। बस पापा जबरन से मेरी शादी करने पर तुल गये थे। फिर शुरु हुआ मेरी नुमाइश का दौर, नये-नये लोग, अजीब-अजीब सवाल... कितने बजे सो कर जागती हो? पूजा करती हो या नहीं? इतनी जोर से हॅसती हो? क्या-क्या पका लेती हो...? मैं झका जाती और बात नहीं बन पाती थी। पापा मुझे दुश्मनों की तरह कोसते। माँ

तिलमिला कर कभी पापा को धैर्य बँधाती तो कभी मुझे सपोर्ट करती। मैं खुद कभी हथियार डालती फिर अचानक आसमान को देखती, दूर... जहाँ तक भी मेरी नजरें जा पातीं। मैं देखती, आसमान उससे और आगे तक है। दूर, बहुत दूर तक। बिना सीमाओं के उड़ती हुई चिड़ियों को देखती और फिर अपने फैसले पर अड़ जाती। इसी मानसिक विचलन के कारण मेरी रिहर्सल भी छूट रहीं थीं।

मैडम का फोन आया था "शालिनी शो नहीं करना है क्या...? चार दिन से गायब हो।" उस दिन रिहर्सल पर मैंने अपनी मनःस्थिति खुली किताब की तरह सबके सामने खोलकर रखी थी। खासकर मैं सबके बहाने रवि को ही अपनी परेशानी बता रही थी यह सोचकर कि वह सही सलाह देगा। उस दिन रवि ने कहा था "देखो शालिनी! अभी तुम खुद अस्थिर हो... पहले तुम खुद फैसला करो कि शादी करनी है या नहीं? क्योंकि, लड़कियों की शादी का अर्थ तो केवल इतना ही समझा जाता है कि इस बोझ को अपने सिर से उतार कर दूसरे के सिर पर रखना। और यदि तुम इसके लिये तैयार नहीं हो तो तुम किसी पर बोझ न बनकर खुद आत्म निर्भर बन जाओ फिर तुम तो पढ़ी-लिखी हो, आसानी से कहीं भी नौकरी कर सकती हो। यदि शादी करना चाहती हो तो... मुझ में भी कोई बुराई नहीं है। परेशानी से भी मुक्ति और नाटक भी होता रहे यानी आम के आम और गुठलियों के भी दाम।" कहकर रवि ठठाकर हँस पड़ा था। उसने मजाक किया था या गम्भीर, मैं नहीं जानती... हाँ लेकिन, मैं जरुर गम्भीर थी। मैने मैडम से बात की अगर रवि मजाक नहीं कर रहा हो तो मैं तैयार हूँ। दूसरे दिन मैडम ने हम दोंनो के साथ बातें की और तीसरे दिन हमने कार्ट में शादी कर ली।

मैंने पापा की व उनके परिवार की मर्यादा तोड़ी थी इसलिये पापा से रिश्ता तो टूटना तय ही था। माँ भी कुछ न कर सकी इस बार पापा किसी की मानने को तैयार नहीं थे। ज्यादा कहने पर माँ को भी घर से निकालने की धमकी मिली। और मम्मी कटे कबूतर सी छटपटा कर रह गईं। मुझे उस दिन समझ आई कि पापा मुझसे नहीं बल्कि मेरे साथ जुड़ी अपनी मर्यादा को प्यार करते थे जिसे मैने तोड़ दिया था। मैं फोन कर लेती माँ चुपचाप बातें कर लेती। माँ ने यह सोचकर सन्तोष कर लिया था कि मैं खुश हूँ। मैं थी भी बेहद खुश मुझे लगता ही नहीं था कि मैंने शादी कर ली है। वही रिहर्सल, वही नाटक, वही अल्हड़ता में हँसना-खिलखिलाना, बहसें, नोंक-झोंक सब कुछ तो वैसा ही था बस शहर बदल गया था। रवि का परिवार तो गाँव में ही था। दो पैट्रेल पंप लखनऊ में थे रवि उन्हें देखता था। लखनऊ मेरे लिए नया शहर जरुर था लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। मैं अपनी टीम के साथ कई बार वहाँ नाटक करने जा चुकी थी।

शाम को तो रिहर्सल होती लेकिन दिन भर, मैं अकेली, घर में बोर होती। आखिर किताबें भी कितनी पढ़ती। मैंने एक फाइनेन्स कम्पनी में नौकरी कर ली। मैंने रवि को चहकते हुए यह खबर सुनाई थी "रवि मुझे बारह हजार रुपये महीने की नौकरी मिल गई है।" रवि ने मेरे चेहरे को कुछ अजीब तरह से देखा उसका मुस्कुराता चेहरा धीरे-धीरे सपाट होता गया "सिर्फ बारह हजार के लिये तुम इतना खुश हो रही हो... इससे कहीं ज्यादा खर्चा मेरे जल-पान का होता है।" रवि की यह बात सुनकर मुझे अचम्भा हो रहा था। मैं एकदम से यह तय कर पाने की स्थिति में भी नहीं थी कि रवि मजाक कर रहा है या गम्भीर होकर मुझे मेरी औकात बता रहा है। फिर भी मैंने गम्भीरता से अपने मन की बात कही "रवि मैं यह नौकरी तुम्हारे लिये नहीं कर रही यह तो मैं आत्मनिर्भर होने को कर रही हूँ। आप ही तो कहते थे किसी पर बोझ न बनने की बात... और मेरा मन भी लगा रहता है।"

"अब उसकी कोई जरुरत नहीं है और वैसे भी मम्मी-पापा को यह शादी रास नहीं आई है।"

"क्यों...?"

"वही बड़े-बूड़ों की सोच, खानदान में चाचा मंत्री रहे हैं और बेटे की शादी ऐसे सामान्य तरीके से... लेकिन तुम उसकी फिक्र मत करो मैं मैनेज कर लूंगा बस तुम... यह नौकरी-वौंकरी...? खैर, कुछ दिन मन बहलाने को कर लो... वैसे भी अब तुम्हें आत्मनिर्भर होने की जरुरत नहीं है क्योंकि तुम अब शादी-शुदा हो और रवि प्रकाश की पत्नी... समझ गई।"

अब मैं समझ गई थी कि रवि मजाक नहीं कर रहा था। लेकिन उसमें अचानक आये इस बदलाव को मैं समझ नहीं पा रही थी। 'रवि जरूर किसी उलझन में होगा उससे उसका मूड अपसैट है तभी इस तरह की बातें कर गया है।' यही सब सोचकर मैंने रवि की बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया था। शाम तक नौकरी फिर रिहर्सल या बहसें गप्प गोष्ठियां कालेज का समय जैसे वापस आ गया था। कालेज, ट्यूशन फिर रिहर्सल। दोस्तों के साथ हँसना-ठठाना ताने-उलाहने, कभी घर जल्दी पहुँचना कभी थोड़ी देर हो जाना, रवि अभ्यस्त था इन सब चीजों के लिए इसलिये मैं भी बे-फिक्र थी। रवि भी लगभग रोज सा ही हमारे साथ रिहर्सल पर आ ही जाता था। मैं भी खुश थी समय जैसे वे परों के उड़ने लगा था।

कुछ ही दिनों के बाद से एक अजीब बात होने लगी थी और न चाहते हुए भी मेरा ध्यान उस तरफ जा रहा था। पिछले एक महीने से रवि हमारे नाट्य ग्रुप के साथ आकर नहीं बैठ रहा था। शाम को मैं अक्सर उसे घर पर दो-चार लोगों के साथ मीटिंग करते हुए पाती। उनके बातों, लहजों और पहनावे से वे राजनैतिक लोग थे इतना मैं समझती थी। शुरु-शुरु में यह बात मुझे ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं लगी क्योंकि यह बात मैं पहले से ही जानती थी कि उसके राजनैतिक रसूख भी हैं। लेकिन अब कुछ अघटित सा घटने लगा था। ठीक वैसे ही जैसे दुनिया में बहुत कुछ घटित होते सुकून नहीं देता और नघटित हो ऐसी संभावना के लिए छटपटाते हैं। मेरी स्थिति लगभग ऐसी ही थी।

उस दिन इतवार था। हमारे ग्रुप के डायरेक्टर ने अगले नाटक के चयन के लिये तीन बजे मीटिंग में हम सब के साथ रवि को भी बुला रखा था। तीन बजे का समय भी रवि के कारण ही रखा गया था क्योंकि रवि दो से पाँच घर पर ही होता था लेकिन रवि नहीं आया। सबने बहुत देर तक रवि का इन्तजार भी किया। अन्ततः मीटिंग शुरु हुई और नाटक का चुनाव कर लिया गया। न जाने क्यूँ मुझे उस दिन रवि का वहाँ न पहुँचना अच्छा नहीं लगा। उस दिन मैं यह सोचकर घर पहुँची कि आज रवि से बात जरूर करुँगी और इस बदलाव का कारण भी जानकर रहूँगी।

उस दिन भी कुछ लोग रवि को घेरे बैठे थे। वे सब शराब पी रहे थे। एक गिलास रवि के हाथ में भी था। मैने उसे इस रूप में पहली बार देखा था। देखते ही मुझे बिजली का सा झटका लगा। मैं शायद रवि पर बिफर पड़ती, लेकिन मैंने अपनी पूरी ताकत लगाकर खुद को संयत किया और इस तरह अन्दर गई जैसे मैंने उन लोगों को देखा तक न हो। हालाँकि घर आने से पहले मुझे बहुत तेज भूख लगी थी लेकिन घर पहुँचते ही मेरी चाय पीने तक की इच्छा नहीं रही थी। मैं बस उन लोगों के जाने का इन्तजार कर रही थी। मुझे यह इन्तजार लगभग दो घंटे करना पड़ा।

रवि आज नशे में है इसलिये तेज आवाज या क्रोध से बात बिगड़ सकती है इस खयाल से मैंने रवि से बड़ी सहजता से पूछा "रवि आज आप आये क्यों नहीं...? पता है आज बड़ा मजा आया पूरा यूनिट इकट्ठा था तुम्हारा बहुत वेट भी किया।" "आज ऐसे काम में फँसा रहा जिसकी उम्मीद भी नहीं थी कोशिश भी की लेकिन निकल नहीं पाया और फिर, तुम तो थी ही वहाँ आखिर तुम केवल शालिनी नहीं हमारी पत्नी भी हो।"

रवि की सहजता से लगा कि बात आगे बढ़ाई जा सकती है "आज तुम शराब पी रहे थे... और... ये कौन लोग हैं? जिन्हें मैं अक्सर यहाँ बैठा देखती हूँ।" रवि की आँखों की गोलाई देख मैंने बात हल्की करनी चाही "तुम्हारी पत्नी हूँ इसलिये पूछ रही हूँ।"

मैं सहम गई थी लेकिन मुस्कान की मुद्रा में फैलते रवि के होठों को देख मुझमें साहस सा आ गया था "शालिनी ये पार्टी के लोग हैं चुनाव करीब हैं... इसलिये कुछ तैयारियों पर चर्चा करने आ जाते हैं। और रही बात शराब की तो वह मैं नहीं, वे लोग पी रहे थे। मैं तो बस गिलास हाथ में लिये उनको साथ देने का बहाना भर कर रहा था, सब करना पड़ता है। तुम खुद देख लो मैं, तुम्हें नशे मैं दिख रहा हूँ क्या?" अपने क्रिया-कलाप और हँसी-मजाक से रवि ने मुझे निरुत्तर कर दिया था। मैं उसे उस दिन मीटिंग में चुने गये नाटक के विषय में बताना चाह रही थी कि रवि यकायक गम्भीर हो गया "शालिनी एक बात कहूँ...?

"जी...।"

"तुम यह नौकरी छोड़ दो... दरअसल, मेरे जानने वाले जो बातें करते हैं, मुझे अच्छी नहीं लगती।" कहकर रवि ने ऐसे मुँह बनाया जैसे कोई कड़वी दवा चाट ली हो। मैं एक पल में समझ गई थी रवि जो कहना चाहता था फिर भी चीखी या चिल्लाई नहीं क्योंकि ऐसी समस्याओं से जूझने और निकलने की कला मैने ग्रुप में रहकर मैडम से सीखी थी। वे भी बड़ी से बड़ी समस्या पर धैर्य नहीं खोती थीं।

"रवि! लोग कहते हैं इससे मुझे फर्क नहीं पड़ता... लेकिन तुम क्या कहते हो?"

"शालिनी मैं तुम्हें गलत नहीं समझता... लेकिन बाजार तो है ही, और काम है तो लोगों से हाथ भी मिलाना होता है उनसे हँसना-मुस्कुराना, फोन करना, बातें करना यह सब तो होता ही है।"

"तो इससे... और कितनी औरतें आज काम कर रही हैं अगर ऐसे ही सोचें तो काम कैसे चलेगा?"

"सबकी बात अलग है शालिनी...। कुछ तो देह तक बेचती हैं... । लेकिन तुम तो ऐसा नहीं कर सकतीं। तुम्हारे लिए मेरे मन में ऐसा कुछ नहीं है। शालिनी... ! मैंने कहा न, करना पड़ता है सब... इसीलिये कहता हूँ कि तुम नौकरी छोड़ दो और तुम छोड़ भी सकती हो...।"

रवि की बात सुनकर एकवारगी मैं काँप गई। उसकी बातों ने मुझ में एक बौखलाहट पैदा कर दी थी। यहीं मेरे धैर्य की पराकाष्ठा थी वाबजूद इसके मैं कोई गुंजाइश नहीं छोड़ना चाहती थी। मेरे शब्द काँप रहे थे "रवि तुम तो ऐसे नहीं थे... कितने समझदार थे लेकिन तुम इस तरह की बातें...?"

"समझदार हूँ तभी तो कह रहा हूँ नौकरी छोड़ दो इससे पहले कि... फिर नहीं छोड़ पाओगी।" व्यंग्य भरी मुस्कान के साथ अपनी बात अधूरी छोड़कर रवि उठा और अन्दर जाकर बैड पर पड़कर सो गया।

बहुत देर तक तो मेरा दिमाग कुछ कहने या करने की स्थिति में ही नहीं रहा था। अजीब-अजीब सी आवाजों के साथ लगता जैसे कमरे की दीवारें आपस में टकरा रही हों उनके बीच में दबकर जैसे मैं पिस रही हूँ। मेरा शरीर मृत हो गया है। बाई घर जाने की पूछ रही थी, उसने मुझे झकझोर कर एहसास दिलाया कि मैं जिन्दा हूँ। मन बहुत कसैला हो रहा था, फिर भी मैं यह सोचती बैड पर जा पड़ी कि रवि आज शराब के नशे में है इसलिये यह अनाप-शनाप बक गया है, सुबह तक होश में आ जायेगा तो उसे याद भी नहीं रहेगा कि उसने रात क्या कहा था।

ऐसा नहीं है कि मैं रवि की बातों के निहितार्थ नहीं समझती थी इसीलिये मैं उस रात बिल्कुल भी सो नहीं सकी थी। घड़ी की मामूली टिक-टिक मेरे मस्तिष्क पर किसी हथोड़े की सी चोटें मारती रही। मन का दीपक बुझा तो अंधेरा मेरे मन के साथ जुड़ गया फिर मैं अंधेरे से बातें करती रही। शंका-आशंकाओं के झूले से लटकती कूदती रही, बिखरते सपनों पर पैबन्द लगा कर जोड़ने की कोशिश करती रही। सुबह के उजास से मन का अंधेरा हटा तो आँख लग गई।

रवि ने तैयार होकर ऑफिस जाने से पहले मुझे जगाया सामने घड़ी की सुईयां ग्यारह बजने का इशारा कर रहीं थीं। खिड़की से छनकर आती धूप के घेरे में बेतहासा भाग-दौड़ करते धूल के कण जैसे मेरे अन्दर की कहानी को बयाँ कर रहे थे। मैं यह सोचकर हड़बड़ा कर उठी कि आज ऑफिस को बहुत लेट हो गई। "क्या हो गया...?" रवि ने पूछा तो "रवि मैं ऑफिस के लिए...." मैं अपनी बात भी पूरी नहीं कर पाई कि रवि ठठाकर हँसने लगा "अब उसकी जरुरत नहीं है। मैंने चावला जी को फोन कर दिया तुम्हारी जगह वे किसी और को अपॉइन्ट कर लेंगे।" उसने मुस्कुराते हुए कहा और मेरे गाल पर हल्की सी चपत लगाकर चला गया। उस दिन मुझे लगा कि मैं तो हिल भी नहीं पा रही हूँ। मुझे जंजीरों में जकड़ दिया है। उसकी जकड़न मेरी हड्डियों को तोड़ रही है। जिन्दगी मेरे सामने अचानक एक बोझ की तरह आ खड़ी हुई थी।

जिसे ढोना शायद मेरे वश में नहीं था। मेरे पास कोई दूसरा चारा नहीं बचा था सिवाय यह सोच लेने के कि न सही नौकरी, नाटक तो है। नाटक में कितनी जिन्दगियाँ हैं मैं उनमें डूबकर अपनी जिंदगी तलाशुँगी। सिसकती ही सही मेरी जिन्दगी वहीं है। सब कुछ तो छीन लिया मुझसे। क्या कुछ मैने नहीं छोड़ा...? अपना घर, माँ -बाप का प्यार, अपना शहर, अपने लोग, अपने रिश्ते-नाते इन सब पर भारी था मेरा जुनून, नाटक के लिए। मैं इसे नहीं छोड़ सकती यही सब सोचकर मैंने अपना नाट्य दल बना लिया था, बिल्कुल अपने इसी सलिल रंग मंच की तरह। पैसे की मेरे लिये न कमी थी न अहमियत, मैंने रिहर्सल के लिये एक हॉल किराये पर ले लिया था। जहाँ मेरा ज्यादा समय व्यतीत होने लगा था। करती भी क्या...? घर बचा ही कहाँ था मकान रह गया था बड़ा सा मकान।

मैं भीष्म साहनी का 'मुआवजे' की तैयारियों में जुटी थी। एक दिन रवि रिहर्सल में आ गया और बड़े अच्छे मूड में था। वह सब लोगों के लिए समोसे लेकर आया था। उस दिन मैं उसे देखकर खुश थी। मुझे लगा रवि आज नहीं तो कल वापस आ जयेगा। और फिर सुबह का भूला शाम को घर वापस आये तो उसे भूला नहीं कहते। हम सब रिहर्सल में जुट गये। रिहर्सल खत्म होते ही रवि कुछ जल्दी में घर चला गया मैने सोचा था चुनाव करीव है तो कोई काम याद आ गया होगा। मुझे तो इस बात का इल्म भी नहीं था कि वह मुझे घर पर इस मूड में मिलेगा। रवि कमरे में मेरा इन्तजार कर रहा था।

"शालिनी एक बात पूँछू ....?"

"हाँ... हाँ मैं चहक उठी थी।"

"यदि, मैं कहूँ, तुम नाटक छोड़ दो या कहूँ कि तुम्हें नाटक या मुझमें से किसी एक को चुनना हो तो तुम किसे चुनोगी?"

मैं उसके चेहरे को गौर से देखने लगी उसकी आँखें स्थिर थीं मुझे अंदाजा हो गया था कि रवि मजाक नहीं कर रहा है। अगले ही पल मुझे लगा उसने सवाल नहीं थप्पड़ मारा है। मैं चाह कर भी सहज नहीं रह पा रही थी लेकिन अंधेरे में भी कोई किरण खोजने की कोशिश में मैने खुद को सम्भाला "रवि तुम क्या कह रहे हो, तुम्हें लगता है नाटक तुम्हारी जगह ले सकता है और यह भी संभव नहीं कि तुम मेरे नाटक की भरपाई कर सको। सच कहूँ तो तुम मेरी जिन्दगी हो और नाटक मेरी आस्था।" मुझे लगा रवि खुश हो जायेगा लेकिन उसका चेहरा कुछ अजीब विकृति से भर उठा।

"शालिनी! वैसे तुम्हें अब यह नाटक-वांटक छोड़ देना चाहिए क्या मिलना है इससे।"

"वही जो तुम्हें इलाहाबाद में नाटक करने से मिलता था सुकून, आनन्द।" अचानक रवि ठठाकर हँसने लगा "हाँ आनन्द तो था... लेकिन नाटक से नहीं, तुम जैसी कटीले नाक-नक्श की चटपटी बालाओं का साथ पाकर और तुम्हें तो उड़ा ही लाया न ... ।"

मैं अवाक रह गयी एक दम सन्न। रवि इतना गिर भी सकता है। मैं सोच भी नहीं सकती थी। मैने फिर भी सोचा शायद मजाक कर रहा हो ... "रवि मजाक नहीं साफ कहो क्या कह रहे हो?"

"शालिनी मैं मजाक नहीं कर रहा, सच कह रहा हूँ। मैं नाटक केवल मजा लेने के लिए ही करता था। सस्ता टायम पास किसी फिल्मी हीरो की तरह, तुम्हारे गले में बाँहें डालकर नाचने के लिए। मैं तब भी कहता था क्या हो जाना है इन नाटकों से? क्या बदल जाना है? यह अनपढ़ समाज जो केवल धर्म के लिए जीता है वल्कि कहूँ तो धार्मिक पाखण्डों के लिए। गरीबी दूर हो जायेगी उस गरीब की जो केवल धनवानों को कोसने में अपना पूरा वक्त लगा देता है या उस मजदूर की काया पलट हो जायेगी जो मजदूरी करना ही नहीं चाहता। फिर भी तुम्हें लगता है कि, नाटक से क्रान्ति हो जायेगी। यह पागलपन नहीं तो और क्या है ... ? शालिनी! दुनिया बाजार से चलती है और बाजार पूंजी से, ताकत पूंजी में है। यह पाँच-पाँच सौ के लिए चन्दा करते घूमना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

मैंने देखा रवि गम्भीर हो गया था। न जाने क्यों मुझे लगा उसके दो बड़े-बड़े दांत बाहर उग आये हैं। सिर पर सींग निकल आये हैं। उसके मुँह से खून टपक रहा है। नहीं यह रवि नहीं हो सकता वह रवि जो हमारी यूनिट का एक समझदार इन्सान था। जिसके पीछे मैं अपना हँसता-खिलखिलाता अतीत छोड़ आई हूँ। जिससे मैंने शादी की ... और अगर यह वही रवि है तो यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल थी जो अब असल रुप में मेरे सामने है।

मैं निहत्थी थी फिर भी मैं न जाने कैसे खड़ी हो गयी। मेरे अन्दर एक आग सी जल उठी थी। मैं जैसे फट पड़ना चाहती थी। मैं अपना अगा पीछा सोचना ही भूल गई थी। "रवि मुझे तरस आता है तुम्हारी सोच पर ... मैं नहीं समझती कि अब तुम्हें यह बताना भी सही होगा कि नाटक महज टायम पास नहीं है नाटक केवल कला ही नहीं आत्म सम्मान है। संस्कृति है। हमारी ताकत है। नाटक जरिया है उन लोगों को

जगाने का जिन्हें सदियों से सुलाए रखने को धर्म की थपकी दी जाती रही है। किसी ने जागने की कोशिश भी की तो उसे पाप-पुन्य और संस्कारों की बेड़ियो में जकड़ने की साजिशें रची जाती रहीं, ईंट-पत्थरों से हमले किये जाते रहे। तुम भी कुछ अलग तो नहीं कर रहे हो। वही कर रहे हो जो सदियों से होता आ रहा है। फिर गरीब मजदूर का दर्द तुम जान भी कैसे सकते हो?"

"शालिनी पागल मत बनो, भावनाओं में बहने से कुछ हासिल नहीं है। जो सदियों से चला आ रहा है उसे कोई नहीं बदल सकता न मैं, और तुम भी नहीं। "

"तो मुझे क्यों फोर्श कर रहे हो बदलने को...?"

"क्योंकि तुम पर मेरा अधिकार है।"

"और मेरा ...?"

"सब तुम्हारा ही तो है...।"

"इस सबके बदले में आखिर मुझसे चाहते क्या हो ...?"

"यही कि तुम इस नाटक को मत करो... नाटक और भी तो हैं करने को...।"

सुनकर मुझे हँसी आ गई थी, दरअसल वह घवराया हुआ था। इतनी देर बहस के बाद वह असल मुद्दे पर आ गया था।

"यह समय इस नाटक के लायक नहीं है।"

"कैसा समय है...? यही तो समय है इस नाटक के लिए।"

"शालिनी! समझने की कोशिश करो, तुम मेरी पत्नि हो और तुम यह नाटक करोगी, तो क्या संदेश जायेगा पब्लिक में।"

"लेकिन रवि यह कैसे मुमकिन है। अब जब लगभग नाटक तैयार है तब कह दूं कि यह नाटक नहीं कर रहे। क्या सोचेंगे सब लोग कैसे चलेगा यह संगठन सब छोड़ बैठेंगे। अब यह कोई तुम्हारी राजनैतिक पार्टी तो है नहीं कि जो हाई कमान ने कहा वही सबको मानना पड़ेगा।" कहते हुए मैं उसके चेहरे पर उभरती कुछ अजीब सी लकीरें देख रही थी जैसे मेरा हर शब्द उसे गोली सा लग रहा था। "यह मैं नहीं कर सकती।" आखिर मैंने फैसला सुना दिया था।

वह कुछ देर चुप रहा फिर बोला "शालिनी मैं चाहता हूँ कि तुम राजी-वाजी से ही बात मान जाओ नहीं तो ...?"

"नही तो क्या ...?"

"यही कि यदि तुम नाटक के लिए अपना घर छोड़ सकती हो तो मैं भी ...।"

अब वह मेरे सामने पूरी तरह नंगा हो गया था। "मैने सोचा था अन्य औरतों की तरह तुम भी ऐशो-आराम, चमक-दमक पाकर सब कुछ खुद व खुद भूल जाओगी लेकिन तुम मूर्खता से बाहर नहीं आ सकीं ... अब तुम्हें, ... नाटक या मुझमें से किसी एक को चुनना पड़ेगा, तय तुम कर लो। एक दिन भूखी रहोगी तो सब नाटक भूल जाओगी...।"

उसने जितनी सहजता से कह दिया था मैं उतनी ही असहज हो गई थी। वह क्षण मेरे लिए पूरा जीवन चुनने का था। मुझे एक ओर होना था। एक तरफ सदियों से लीक पर चलता, मान मर्यादा के आभूषणों से सजा-धजा स्थूल सा जीवन। सिमटी-सिकुड़ी छोटे से आसमान को टुकुर-टुकुर झाँकती जिन्दगी थी तो दूसरी ओर गाती, बजाती, नाचती, इठलाती, भूखी, प्यासी, भागती, दौड़ती, अलमस्त परिंदों सी खुले आसमान में पंख पसारे उड़ती, संघर्ष, निस्वार्थ, प्यार, मुहब्बत में खेलती, रोती, सिसकती, हँसती, ठिठोली करती, सर्दी से काँपते हाथों चाय सुड़कती तो कभी चिलचिलाती धूप में सरपट दौड़ती, वारिश में भीगती बसंती रंगों से सजी, नाटक, रिहर्सल, नौक-झौंक, चूँ-चपड़ करती जिन्दगी।

मुझे एक को चुनना था। मैं जीना चाहती थी। जिन्दगी को खेलना चाहती थी। मैंने ठुकरा दिया था स्थूल जिन्दगी को। सुनकर रवि बौखला गया था।

"शालिनी आज मुझे यकीन हो गया कि तुम वास्तव में बहुत बड़ी मूर्ख हो... तुम्हें क्या लगता है तुम इस शहर में नाटक कर पाओगी।"

"यह शहर दुनिया नहीं है। दुनिया कितनी बड़ी है यह तुम नहीं जान सकते। पूजा या नमाज के लिए किसी मंदिर या मस्जिद का होना जरुरी नहीं है उसे करने के लिए इच्छाओं का होना जरुरी है...।" न जाने कैसे मैं यह सब कह गई थी। और एक बार फिर मैने अपना घर छोड़ा था।

राकेश सर! बिना किसी इरादे के मैं इस शहर में चली आई थी। एक सस्ते गैस्ट हाउस में मैंने ठिकाना बनाया था। नौकरी पाना मेरे लिए मुश्किल काम नहीं था। मैं नौकरियां करती और छोड़ती रही। बिना किसी मंजिल के बस चलने जैसा था। मेरी आँखें जैसे कुछ खोजती रहती थीं। मन की बेचैनी और यही खोज मुझे एक दिन माथुर जी की लाइब्रेरी ले पहुँची थी यह सोचकर कि शायद वहाँ मेरे जैसा कोई मूर्ख मिल जाय। माथुर जी इस शहर में ऐसा ही कुछ करना चाहते थे लेकिन उनकी बीमारी उन्हें कुछ करने नहीं दे रही थी। उन्होने ही मुझे यहाँ कमरा दिलाया और अपने छात्रों को साथ लेकर संगठन बना और ....। यही है मेरी जिन्दगी की कहानी जिसे आप जानना चाहते थे ...।

राकेश सर आपको याद है, जब आप अपने दोस्त से फोन पर एक दिन कह रहे थे 'कहाँ यार इस शहर में आकर नाटक साहित्य सब सपने की सी बातें हो गईं। तू दिल्ली में मजे में है। यहाँ तो अखवारों में भी कभी कोई ऐसी खबर भी नहीं पढ़ी।' बस तभी से मेरी नजरें आप पर थीं। और आप मिले भी... लेकिन ... ।

इस सब के साथ मैं यह भी जानती थी कि रवि आसानी से मेरा पीछा नहीं छोड़ेगा। उसकी राजनैतिक ताकत कभी भी मुझ तक पहुँच जायेगी। उसने ठीक वही किया जिसकी मुझे उम्मीद थी। उसका हमला मुझ पर नहीं संगठन की ताकत पर था उन लोगों ने मुझ से कुछ नहीं कहा था। वे दो तीन लोग थे जो घिसे पिटे फिल्मी से संवाद बोलकर पूरे चंदनवन के लोगों को उकसा रहे थे "यहाँ आप लोगों के बीच रंडीखाना आबाद है, जवान लड़के-लड़कियाँ रोज शाम होते ही जुटने लगते हैं। क्या कभी सोचा है क्या होता है यहाँ। क्या संस्कार जायेंगे हमारी बहन-बेटियों में...? लोगों में भी फिल्मी तर्ज पर ही पागलपन सवार हुआ था। राकेश सर! आप सोच रहे होंगे कि मैने लोगों को जवाब क्यों नहीं दिया... दरअसल जवाब के लिए मेरे पास था क्या? उस भीड़ में, सभी में ही मेरे पिता थे जो मुहल्ले भर की मर्यादा को टूटने नहीं देना चाहते थे। मेरे पड़ोसी चाचा जो अपनी ताकत से खड़े नहीं हो सकते उनमें भी कितनी ताकत भर गई थी। उन जवान और अधेड़ों के शरीर गुस्से से काँप रहे थे जिनकी नजरें हमेशा मुझे गिद्धों की तरह नौचती रही थी। किसी भी बहाने वे मेरी करीबी की आकांक्षा पाले जी रहे थे। मौका था तो उनकी भड़ास भी निकल रही थी। ऐसे में मैने उनका सामना करना उचित नहीं समझा था। मुझे यह बिल्कुल भी डर नहीं था कि वे लोग मेरे साथ क्या करेंगे बल्कि मैं ऐसा कुछ भी होने देना नहीं चाहती थी जैसा रवि चाहता था। लोग मेरे साथ बदतमीजी करें हंगमा हो पुलिस आये। दूसरे दिन दो लोगों

से पूछ कर मीडिया खबर बनाए और संगठन के नये लड़के-लड़कियाँ घबराकर दूर छिटक जाँय, रवि यही तो चाहता था।

यहाँ से जाने से पहले में रातभर सोचती रही कि क्या मेरा रहना यहाँ ठीक है...? अंतः मुझे लगा कि अब आप और माथुर जी मेरे बिना भी नाटक करते रहेगो। मैने आपके साथ मिलकर युवा पीड़ी में वह बीज बो दिया है जिसे कोई रवि नहीं उखाड़ सकता।

राकेश सर! क्या मेरा यह फैसला गलत था? मैं नहीं जानती आप इसे गलत कहेंगे या सही लेकिन आप, माथुर जी और पूरा संगठन जानता है कि "आंधी हो तूफान बबंडर नाटक नहीं रुकेगा" आपका अगला नाटक ही, रवि और मर्यादा के रक्षकों को जवाब होगा।

रही बात मेरे जाने की तो मुझे तो वैसे भी जाना था एक नये शहर में एक और संगठन का बीज बोने। मुझे फिर एक राकेश और माथुर जी को तलाशना है। इसलिए मैं दूसरे पड़ाव पर जा रही हूँ। अलविदा दोस्तो

आपकी दोस्त - शालिनी।

पूरी चिट्ठी पढ़ने के बाद मैं देर तक पत्थर का बुत बना बैठा रह गया था जैसे मेरे हाथ-पैरों को काठ मार गया था इस चिट्ठी में शालिनी की वही आँखें अब भी मैं देखता हूँ और माथुर जी के घर पहुँच जाता हूँ जहाँ पूरा यूनिट मेरा इन्तजार कर रहा होता है।